

प्रवचन नं. ५

गाथा-६-७

शनिवार, दिनाङ्क १९-०३-१९६६

फाल्गुन कृष्ण १३,

वीर संवत् २४९२

कुन्दकुन्दाचार्य २००० वर्ष पहले हुए, उनके पश्चात् ये (पूज्यपादस्वामी) हुए हैं। महासमर्थ (थे), महाविदेहक्षेत्र में गये थे। महाविदेहक्षेत्र में भगवान विराजते हैं, वहाँ ये पूज्यपादस्वामी दिगम्बर मुनि, दर्शन करने गये थे, ये सब श्लोक सामने हैं, सामने हैं न श्लोक ? जैसे कुन्दकुन्दाचार्य, भगवान के पास गये थे। महाविदेहक्षेत्र में वर्तमान परमात्मा विराजते हैं, बड़ी आयु है। २००० वर्ष पहले कुन्दकुन्दाचार्य गये थे, वैसे ये पूज्यपादस्वामी भी दिगम्बर मुनि महासमर्थ धर्मात्मा, भगवान के दर्शन करके आये और फिर यह शास्त्र कहे हैं।

मुमुक्षु :

उत्तर : यह कुछ पता नहीं, गये थे इतना। सामने है, देखो! लिखा है, यह बताया था, सबेरे बताया था। 'विदेहजिनदर्शनपूतगात्रः' (श्रवणबेलगोल शिलालेख १०८) शुरुआत करने से पहले शब्द है। श्रीपूज्यपादमुनिरप्रतिमौषधर्द्धिर्जीयाद्विदेह-जिनदर्शनपूतगात्रः श्रवणबेलगोल शिलालेख १०८ है। शुरुआत में है, है न शुरुआत ? १०८ है बीच में। ऐसे दस हैं। एक, दो, तीन है न ? दसवाँ बोल है, उसमें यह है। विदेहक्षेत्र में भगवान विराजते हैं। वहाँ पूज्यपादस्वामी गये थे और फिर यह (शास्त्र) बनाया।

परमात्मा विराजते हैं, अभी वह के वही विराजते हैं। आयुष्य तो लम्बा है। करोड़पूर्व का आयुष्य है। समझ में आया ? एक पूर्व में कितने वर्ष जाते हैं ? (लाखों) संक्षिप्त ठीक किया। लम्बा आयुष्य है। एक पूर्व में सत्तर लाख करोड़ और छप्पन हजार करोड़ वर्ष जाते हैं। ओहोहो... ! इसमें क्या है ? अनन्त काल गया, उसमें यह तो संख्यातवाँ काल है। एक पूर्व में सत्तर लाख करोड़, एक करोड़, दो करोड़ ऐसा नहीं। हजार करोड़ ऐसा नहीं, एक लाख नहीं। सत्तर लाख करोड़ और छप्पन हजार करोड़ वर्ष का एक पूर्व कहलाता है - ऐसा एक करोड़ पूर्व का भगवान का आयुष्य है। सीमन्धर भगवान तीर्थकरदेव महाविदेहक्षेत्र में त्रिलोकनाथ परमेश्वर विराजते हैं। समझ में आया ? वर्तमान की बात चलती है न ?

चौबीस तीर्थकर तो मोक्ष पधारे, वे तो सिद्धपद हो गया। ये अरिहन्त पद में तो यहाँ

विराजते थे। जब महावीर भगवान आदि (थे), तब समवसरण में अरिहन्त पद में थे। अभी तो सिद्ध हो गये। णमो सिद्धाणं। यह सीमन्धर भगवान तो णमो अरिहन्ताणं में है, अभी अरिहन्त पद में हैं। चार कर्म नाश हुए हैं, चार कर्म बाकी हैं। समवसरण है, उपदेश चलता है, इन्द्र आते हैं। समझ में आया ? घर का ठीक से पता न हो, उसमें पर की पंचायत इतनी सब कहाँ लगाना ? मोहनभाई ! आहाहा... ! ये पूज्यपादस्वामी भगवान के पास गये थे। समझ में आया ? वहाँ से आकर फिर ये शास्त्र रचे हैं।

छठी गाथा का चलता है, देखो ! कहते हैं कि शरीर में, पेट में आहार न हो और रोग आदि हो, तब जो अनुकूल चीज लगती थी, वही इसे इसके अपने संस्कार के कारण प्रतिकूल लगती है—ऐसा यहाँ सिद्ध करना है। यह इष्टोपदेश है। वासनामात्र से यह पर में सुख है, यह इसकी कल्पना है। स्त्री, शरीर, कुटुम्ब-परिवार, खाना-पीना, महल-मकान, ये सब मुझे सुखरूप हैं - ऐसा मूढ़ जीव अपनी वासना खड़ी करके मानता है। यह उसका स्वयं का उल्टा पुरुषार्थ है। कर्म का कारण नहीं—ऐसा इष्टोपदेश में कहते हैं। इसका नाम इष्टोपदेश। कर्म के कारण से है, यह उपदेश इष्टोपदेश नहीं है। समझ में आया ?

मुमुक्षु : अभी आयेगा।

उत्तर : नहीं आयेगा, दूसरा आयेगा इसमें। इसमें नहीं आवे ऐसा। उपादान पहले से ले गये हैं, दूसरी गाथा से। उपादान के परिणाम और क्षणिक उपादान, हों ! त्रिकाल उपादान नहीं। सोना अपने उपादान परिणाम से सोना होते-होते सोलहवान हो जाता है, निमित्त भले हों; इसी प्रकार प्रत्येक पदार्थ अपने उपादान से ही कार्य कर रहा है। यह पहली, दूसरी गाथा से शुरु किया है अथवा पहली गाथा में शुरु किया था। भगवान परमात्मा को मैं नमस्कार करता हूँ। कैसे परमात्मा ? अपने पुरुषार्थ से स्वभाव को प्राप्त किया है। आया था या नहीं चन्दुभाई ? पहली गाथा में। अपने पुरुषार्थ से जिन्होंने स्वभाव को प्राप्त किया है और इससे कर्म का अभाव हुआ। यह पहली गाथा में ही लिया था। पुरुषार्थ से प्राप्त किया है। इसका अर्थ यह कि पुरुषार्थ से उल्टा प्राप्त (करता है), संसार में उल्टा प्राप्त करता है। उल्टे पुरुषार्थ से उल्टा-विकारी प्राप्त करता है और सुल्टे पुरुषार्थ से आत्मा की शान्ति प्राप्त करता है। यह तो इसमें सिद्धान्त आ गया। सब जगह कोई समान कथन... जैसे आता हो, वैसे आवे न। समझ में आया ?

कहते हैं कि शरीर में, पेट (में) एक रोटी, सेर चावल पड़े हों तो यह सब ठीक लगता है और न हो तो सब (अठीक लगता है)। यह स्त्री प्रिय हो, सब अनुकूलता हो परन्तु अन्दर क्षुधा हो अथवा मस्तिष्क में दूसरी कोई चिन्ता चढ़ गयी हो... कहो, ठीक है या नहीं? चिन्ता अन्यत्र कहीं चढ़ गयी है, इसलिए यह सब लड़के हैं, स्त्री है, पैसा है, शरीर है,... मोहनभाई की अपेक्षा इनका शरीर अच्छा है परन्तु अन्दर कल्पना की जाल से (दुःखी होता है)। यह तो दृष्टान्त कहा।

मुमुक्षु :

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! ऐसे दिखाव में देखो... दो व्यक्ति बताओ। यह तो इस चलने की अपेक्षा बात है। कहो, समझ में आया इसमें? धूल अच्छा हो या बुरा हो उसके साथ सम्बन्ध क्या है? आहाहा! इस आत्मा की नजर कर न, बापू! तू उल्टी नजर करता है, यह तेरा उल्टा पुरुषार्थ है, सुलटा करना वह तेरे हाथ में है। दूसरा कुछ (नहीं) दुनिया जड़ की उसके कारण वह तो अब हुआ ही करता है। उसकी कितनी सम्हाल रखने से वह रहेगा? लाख सम्हाल करेगा (तो भी) धूल होकर, राख होकर पड़ी श्मशान में चली जायेगी। वह कहीं तेरे रखने से रहे ऐसा नहीं है। ऐसा होगा? डॉक्टर! डॉक्टर रखते हैं या नहीं वहाँ? नहीं; धूल में चला जाता है। फूँ... (होकर), नहलाया, धुलाया, खिलाया, सुलाया, मिलाया, यह सब किया तब क्षण के बाद अन्त में यह...! समाप्त! यह तो जड़ है, ये कहाँ आत्मा था? इसकी दशा क्या आत्मा के आधीन रहती है?

अज्ञानी को अपनी कल्पना में जब दुःख की कल्पना हो अथवा क्षुधा आदि का दुःख हो तब अनुकूल पदार्थ भी उसे ठीक नहीं लगते। वह अपनी वासना के कारण से। पदार्थ कोई वह वासना उत्पन्न नहीं कराते - ऐसा यहाँ सिद्ध करना है। देखो! 'एक पक्षी (चिरबा)... कोई होगा। तुम्हारे ऐसा कुछ हिन्दी नाम आता है? चिरबा कौन होगा? जो कि अपनी प्यारी चिरैया के साथ रह रहा था,... कोई पक्षी (होगा)। वे दो पक्षी नहीं होते? चकबा होता है। रात्रि में अलग हो जाते हैं अथवा दूसरे दो बड़े जानवर आते हैं, जंगल में दोनों साथ रहते हैं। इतने-इतने (होते हैं) सारस! वे दोनों (साथ में) रहते हैं और फिर भिन्न पड़े तो ऐसे दुःख... दुःख... दुःख... दुःख... लगे। दो इतने-इतने बड़े होते हैं। हमारे तो जंगल में सब देखना होवे, बहुत देखा होवे न!

वह पक्षी अपनी प्रिय स्त्री के साथ रहता था। उसे धूप में रहते हुए भी संतोष और सुख मालूम देता था। दोनों जनें साथ में हों धूप में-धूप में हों, समझ में आया ? और धूप में रहने पर भी सन्तोष और सुख (का अनुभव करते थे)। दोनों जनें बस गलगलिया करते हों, बोले, चलें, छूकर अन्दर आवाज करें और... रात के समय जब वह अपनी चिरैया से बिछुड़ गया,... अपनी स्त्री से अलग पड़ा। रात्रि में इकट्ठे नहीं होते वे तो अलग रहते हैं। तब शीतल किरणवाले चन्द्रमा की किरणों को भी सहन (बरदास्त) न कर सका। वह शीतल ठण्डी ऐसी हवा आवे परन्तु उसे ठीक नहीं लगे। क्योंकि वह वासना (प्रेम) स्त्री के प्रति है न! उसके कारण (दुःखी होता है)। जो पदार्थ है वही है, साथ में स्त्री थी तो धूप में भी अच्छा लगता था। (अब) इस सर्दी में भी खराब लगता है। देखो! ऐसा कहते हैं। दोनों साथ-साथ में कहा न? चन्द्रमा की शीतल किरणें ऐसी होती हैं परन्तु स्त्री बिना उसे, आहाहा! (होता है)। इस वासना का उसे वास है, उसकी उल्टी वासना में गिर गया है।

उसे चिरैया के वियोग में चन्द्रमा की ठण्डी किरणें सन्ताप व दुःख देनेवाली ही प्रतीत होने लगीं। लो! यह मन में दुःख हो उसे लाख-करोड़ अनुकूलता हो (परन्तु) अन्दर बेचैनी (होती है) मुझे कुछ ठीक नहीं लगता (ऐसा बोलता है) समझ में आया ? आहाहा! कुछ धूल में भी नहीं परन्तु व्यर्थ की वासना खड़ी करके (दुःखी होता है)। समझ में आया ? ठीक ही है, मन के दुःखी होने पर सभी कुछ असह्य हो जाता है, कुछ भी भला या अच्छा नहीं मालूम होता।' मन में कल्पना... कल्पना... कल्पना... देखो न! आहाहा! समझ में आया ? हमारे था न? वह हेमचन्द नहीं ? मुम्बई। भूपेन्द्र डाईंग प्रिन्टिंग वर्क्स... उसे बेचारे को बहुत साधन था, पैसा, लड़के, स्त्री सब साधन था, बहुत साधन। उस समय पन्द्रह-बीस लाख होंगे, उस दिन! अभी तो बहुत हो गये, वह हेमचन्द। वह मेरे भाई होते हैं न! बड़े भाई का लड़का। उसे सब था परन्तु अन्दर से बारम्बार कहता, हों! वह बेचारा कहता। एक वह नहीं, गाँधी आया था ? गाँधी परिवार में नहीं ? वहाँ अपने राजकोट, एक भाई-बन्धु था। गाँधी कुटुम्ब में गुलाबचन्द गाँधी, गुजर गये न ? उनके कुटुम्ब में गाँधी है, वह यहाँ आता है, उनका भाईबन्धु था। मुझे हेमचन्दभाई ऐसा कहता कि भाई! इस मरने में कुछ दुःख होता होगा ? और मरकर कुछ पाप लगता

होगा – ऐसा पूछा करे। अपघात किया न? वहाँ पैसे थे, चार राजकुमार जैसे लड़के थे, पन्द्रह-बीस लाख रोकड़ थे, ढाई हजार की दिन की आमदनी थी। शरीर में रोग कुछ नहीं था, मन की चिन्ता उत्पन्न हुई, हाय... हाय... ! ऐसा हो गया, ऐसा हो गया, ऐसा हो गया। ऊपर से गिरा दिया लो! मन में दुःख के कारण कुछ शान्ति नहीं। बाहर के पदार्थ वह के वही होने पर भी लगता नहीं और यदि मन में शान्ति होवे (तो) बाहर की प्रतिकूलता चाहे जितनी हो तो भी अकेला स्वयं शान्ति को वेदता है। दुनिया चाहे जहाँ हो, मैं मुझमें हूँ। समझ में आया ?

इन सबसे मालूम पड़ता है कि इन्द्रियों से पैदा होनेवाला सुख वासनामात्र ही है। देखो! यह सिद्धान्त, यह करना है, हों! कर्म से नहीं, वासनामात्र है। यह इष्टोपदेश है। आत्मा में अन्दर में शान्ति, आनन्द है उसे आनन्द में दृष्टि न देकर (बाहर में सुख मानता है)। (उस आनन्द में दृष्टि दे) उसका नाम धर्म है। आत्मा आनन्दमूर्ति में दृष्टि करना, इसका नाम धर्म है। सम्यग्दर्शन धर्म, वह प्रगट न करके पर पदार्थ में अन्दर में वासना से मानता था। प्रतिकूलता आवे तब दुःख लगता है, यही प्रतिकूलता बाहर की हट जाये परन्तु अन्दर में कल्पना आयी (तो) अनुकूलता के समय भी दुःख लगता है। आहाहा!

कितने ही कहते हैं, अब इस मकान में रहना रुचता नहीं – ऐसा कितने ही बोलते हैं, हों! कौन जाने क्या होता है, कुछ चैन नहीं पड़ता। वह का वह पलंग, वह का वह मकान मुझे अच्छा लगता था, अब कौन जाने क्या होता है, क्या है, पता नहीं पड़ता। समझ में आया? फिर एक व्यक्ति को तो यहाँ तक बोलते (सुना कि) मेरी नरक की आयु बँध गयी होगी? वह फिर ऐसा कहता हमारे पास तो बहुत आते हैं या नहीं? नरक की आयु बँध गयी होगी? कहीं चैन नहीं पड़ता। यह सब सुविधा है, पैसा है, लड़के हैं। सब था, लो! यह परिणाम बिगड़ा ही करते हैं, अच्छे नहीं आते। नरक की आयु बँध गयी होगी? परन्तु नरक की आयु बँधना यह किसलिए व्यर्थ की कल्पना की? आहाहा!

भगवान आत्मा आनन्दकन्द सच्चिदानन्दस्वरूप है, उसमें दृष्टि दे, तुझे आनन्द आयेगा, यह विश्रामस्थल आत्मा है। समझ में आया? विश्राम लेनेवाले को विश्राम का स्थान यह है। लो! आता है या नहीं? निर्जरा अधिकार में नहीं आता? यह स्थाता का स्थान है। यह निर्जरा अधिकार में आता है। समझ में आया? २०३ गाथा में है, यह स्थाता का-

रहनेयोग्य रहने का स्थान आत्मा है। समझ में आया ? यह (आता) है। ठीक है। वे स्थाता का स्थान अर्थात् रहनेवाले का स्थान नहीं हो सकनेयोग्य होने से... ये बाहर के राग-द्वेष हैं, वे रहनेवाले का स्थान नहीं-ऐसा कहते हैं। राग-द्वेष, पुण्य-पाप, इनका फल यह अपदभूत है, यह रहनेवाले का स्थान नहीं, यह भटकाव स्थान है। और जो तत्स्वभाव से (आत्मस्वभावरूप से) अनुभव में आता हुआ, नियत अवस्थावाला, एक, नित्य, अव्यभिचारी भाव (चैतन्यमात्र ज्ञानभाव) है, वह एक ही स्वयं स्थायी होने से स्थाता का स्थान अर्थात् रहनेवाले का स्थान हो सकनेयोग्य होने से पदभूत है। ओहोहो! आचार्य ने तो कितनी बात रखी है! कौन जाने कहाँ याद आया यह ? समझ में आया ? २०३ गाथा है, निर्जरा अधिकार।

क्या कहा ? भाई! तुझे स्थिररूप से रहना हो तो इस स्थाता का स्थान भगवान आत्मा है, अतीन्द्रिय आनन्द विश्राम स्थान आनन्द का धाम, वहाँ दृष्टि कर। स्थिरता, रहनेवाले को स्थान वह देगा। आहाहा! निर्जरा अधिकार है। समझ में आया ? अच्छी दुकान चलती हो तो फिर आधे में निकाल डाले और पूरी दुकान करे। साधारण चलती हो तो क्षण में सोनगढ़ जाये और क्षण में वहाँ जाये। फिर दुकान जम गयी हो तो वही रहे। इसी प्रकार यह स्थाता का स्थान भगवान आत्मा है। करते हैं न ? चन्दुभाई! आहाहा! शुभभाव का करे, यह करे उसमें से कुछ मिले नहीं। भगवान आत्मा ज्ञानानन्द का धाम, स्थिर होने का स्थान, रहनेवाले का रहने का स्थान आत्मा है। ए... गुलाबभाई! यह दूसरे प्रकार की बातें हैं, तुम्हारे सब मुम्बई के लिखावट से अलग प्रकार है। दूसरी प्रकार का अर्थ हुआ न ? भाई! दूसरा प्रकार अर्थात् विपरीत, उसकी अपेक्षा विपरीत। आहाहा!

भाई! कहते हैं, यह वासनामात्र है। सभी कुछ असह्य हो जाता है, कुछ भी भला या अच्छा नहीं मालूम होता। लो! उस स्त्री के वियोग में उसे ऐसी चन्द्र की किरण की शीत अनुकूलता सहन नहीं होती। सहन न कर सका। सहन कर सका नहीं। उस चन्द्र की किरण, उसकी सेवा कर सका नहीं। इसी प्रकार लाख स्त्री और अनुकूलता हो ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती लो न! छियानवे हजार स्त्री। ब्रह्मदत्त को छियानवे हजार स्त्री, बड़ा चक्रवर्ती, सात सौ वर्ष की आयु, मरते हुए... हाय! हाय!... रानी... रानी... रानी... करता (था) कैसा नाम कहा ? कुरुमति! हीरे के पलंग पर सोता था, हीरे का पलंग, हों! चक्रवर्ती (था)

सोलह प्रकार के देव तो सेवा करते थे, सेवा करते थे, चक्रवर्ती राजा। अभी के पुण्यहीन को इतने सब पुण्य होंगे या नहीं, जँचना कठिन पड़ता है। साधारण पुण्य है न लोगों के! समझ में आया? चक्रवर्ती है। वर्तमान में महाविदेहक्षेत्र में भगवान विराजते हैं, वैसे चक्रवर्ती भी वहाँ विराजते हैं। महाविदेहक्षेत्र, चक्रवर्ती राजा समझ में आया?

जब कुन्दकुन्दाचार्य यहाँ से दर्शन करने गये थे न? संवत् ४९, २००० वर्ष हुए इनका - कुन्दकुन्दाचार्य का इतना छोटा शरीर (और) वहाँ तो पाँच सौ धनुष का (शरीर)। चक्रवर्ती ने पूछा, प्रभु! यह कौन है? तीड़ जैसा इतना शरीर! ऐसे चार हाथ का, वहाँ पाँच सौ धनुष (अर्थात्) दो हजार हाथ ऊँचा। वह चक्रवर्ती राजा। अपने यहाँ किया है, समवसरण में सब रखा है। यहाँ बाहर में मानस्तम्भ में रखा है। वहाँ चक्रवर्ती राजा है, मुनि को देखकर (पूछा कि) यह कौन? इतने छोटे मुनि! यह कौन नग्न मुनि? तीड़ जितना शरीर लगता है। भगवान के मुख में से निकला 'भरतक्षेत्र के सत्धर्म वृद्धि करा' सत्धर्म की वृद्धि करनेवाले ये आचार्य हैं। समझ में आया? क्या कहा?

कहते हैं आत्मा को जहाँ अन्तर में शान्ति नहीं उसे बाहर के पदार्थ कोई सुख उत्पन्न नहीं करते और आत्मा को जहाँ प्रतिकूलता हो (तथापि) अन्दर अकेला आनन्द है, समझ में आया? आहाहा! यह स्वयं की कल्पना का कारण है या बाहर का? ऐसा यहाँ कहते हैं। सच्ची बात ऐसी नहीं।

इन सबसे मालूम पड़ता है कि इन्द्रियों से पैदा होनेवाला सुख वासनामात्र ही है। आत्मा का स्वाभाविक एवं अनाकुलतारूप सुख वासनामात्र नहीं है, ... भगवान आत्मा अनाकुल आनन्द सहजस्वरूप आत्मा है, उसमें अन्तर्दृष्टि देने से अनाकुल स्वाभाविक, वासना नहीं परन्तु स्वाभाविक आनन्द प्राप्ति हो ऐसा स्थान आत्मा है। समझ में आया? अनाकुलतारूप सुख वासनामात्र नहीं है, वह तो वास्तविक है। समझ में आया? गुड़ के रव में से गिरता हुआ जो गुड़ निकले वह वास्तविक उसका स्वभाव है, इसी प्रकार आत्मा आनन्द का रव है। इसे क्या पता पड़े? ऐसा आत्मा? आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का रव, रव गुड़ का पिण्ड है। रव समझ में आता है? रव समझ में आता है? इतना नहीं आता? कोल्हापुर! इतनी भेलियाँ आती हैं, चार-चार मण की भेलियाँ (आती हैं) और आधे नम्बर का न? आधे नम्बर का कोल्हापुर का ऊँचा गुड़ होता है। बहुत ऊँचा!

आधे नम्बर का बहुत ऊँचा होता है। उसमें साबुन, धूल, बिल्कुल कुछ नहीं। एकदम रस, उसकी भेलियाँ (आवे)। इसी प्रकार आत्मा अकेला अतीन्द्रिय आनन्द रसकन्द की भेली है। यह व्यर्थ का विकार पुण्य-पाप, काम, क्रोध को उत्पन्न करके खारे रस में हैरान होता है। समझ में आया ? उसमें अन्दर नजर पड़े तो कहते हैं कि वह अनाकुलता का सुख है, वह वासनामात्र नहीं, अन्य तो कल्पित किया था, कल्पित किया था, यहाँ कल्पनामात्र नहीं परन्तु वास्तविक है। ऐसा कहना है। समझ में आया ?

इन्द्र को इन्द्रासन में, करोड़ों इन्द्रियाणियाँ (होती हैं)। लो! करोड़ों इन्द्राणियाँ (होवें) कल्पना है। आत्मा में आनन्द है वह कल्पना नहीं परन्तु वास्तविक है। परन्तु इसे जँचे बिना कैसे जँचे ? मैं इतना बड़ा यह इसे जमता नहीं, दूसरे को बड़प्पन देने लगता है। ओहाहो! तुम तो ऐसे... ओहोहो! ओहोहो! ऐसा कहता है। तुम तो ऐसे और तुम तो ऐसे... तुम तो ऐसे... तुम तो ऐसे... क्यों गुलाबभाई ? दूसरे तो अच्छे लोग, दूसरे अच्छे लोग। दूसरे अच्छे कैसे किसे इसका इसे पता नहीं होता, यह अच्छा अन्दर है या नहीं ? अन्दर वस्तु / पदार्थ है या नहीं ? चीज है या नहीं ? तत्त्व है या नहीं ? पदार्थ भावसहित पदार्थ है या खाली है ? परन्तु कभी उसकी नजर नहीं की है। नजर करने की जरूरत है ऐसा भी जाना नहीं है। आहाहा!

अनाकुलतारूप सुख वासनामात्र नहीं है, ... समझे न ? कौन ? आत्मा का सुख ? वह तो वास्तविक है। यदि इन्द्रियजन्य सुख वासनामात्र-विभ्रमजन्य न होता तो संसार में जो पदार्थ सुख के पैदा करनेवाले... न्याय देते हैं। संसार में जो पदार्थ सुख के पैदा करनेवाले माने गये हैं, ... माना है, माना है, हों! वे ही दुःख के कारण कैसे हो जाते ? वह की वह स्त्री सुख का कारण मानकर वास्तविक कारण (कहे कि) मर न अब ! चैन आने दे, ऐसा बोले, हों! क्या हो गया फिर ? यह तो तूने सुख का कारण कल्पा था, यह फिर उसे कल्पना में दुःख का कारण माना यह तेरी कल्पना है ऐसा कहते हैं। परपदार्थ कोई सुख-दुख देते नहीं, देखो यह इष्टोपदेश ! आहाहा ! मावा और चूरमा के लड्डू और सर्दी में सबेरे सालनपाक बनाया हो, डेढ़ सौ रुपये का सेर ऊँचा डालकर, मूसलीपाक और सालनपाक डालकर... उसमें छह डिग्री का बुखार (आवे)... डाक्टर

कहे कुछ खाना नहीं, हों! परन्तु यह बनाया वह... कि नहीं, अभी महीने-दो महीने कुछ नहीं खाना। ऐ डाक्टर! डाक्टर तो खाने को कहे, हों! वैद्य इन्कार करे।

ऐसा तो नहीं कहे, ऐसा खाने को नहीं कहे, तरल लेना... लेना, शक्ति घटे नहीं, शक्ति घटे नहीं ऐसा रखना, थोड़ा-थोड़ा लेना परन्तु वह सालनपाक नहीं लेना (भले) दो सौ रुपये का बनाया हो, घर में चार लोग (होवें) और सबको सर्दी में पाव सेर-पाव सेर निश्चित करके खाना हो दो सेर बनाया हो। हाय.. हाय! अब ?

मुमुक्षु :

उत्तर : हाँ, हाँ, निश्चित किया हो। इतना देना चाहिए कोई ज्यादा न ले जाये, कोई कम न ले जाये, सब व्यवस्थित होता है न? सब होता है। यह सब देखा है न, सब हुआ है। समझ में आया? घर में होवे तब व्यवस्थित रखना। अब उसमें आया हो बुखार और वह बुखार ऐसा आया हो छह-छह डिग्री कठोर! खाना नहीं, हों! उसमें आठ दिन का हुआ हो... क्या कहलाता है तुम्हारे? वह लम्बा चलता है वह? मुद्दतियो क्या कहते हैं उसे? टाइफाइड! उसमें पन्द्रह दिन टाइफाइड चला अब? पन्द्रह दिन क्या? डेढ़ महीने तक कुछ खाना नहीं, हों! परन्तु यह दो महीने का बनाया (इसका) क्या करना? आहाहा! लड़का-बड़का मर जाये न दो महीने का बनाया हो तो चुपचाप खा ले। फिर कोई फेंक दिया जाता है? परन्तु इसका क्या करना? यह पचे नहीं इसका। आहाहा! ये सुख के पैदा करनेवाले माने थे, वह तेरी वासना से दुःख का कारण तूने माना है, भाई! परवस्तु कुछ सुख-दुःख का कारण है ही नहीं। भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का कारण है। उल्टा पड़ा (तो) विकार की वासना का कारण होता है, कहते हैं। वह यह इष्टोपदेश है। देखो! समझ में आया?

अतः निष्कर्ष निकला कि... सार निकला। देहधारियों का सुख केवल काल्पनिक ही है... देह के धारण करनेवालों का बाहर के संयोग में सुख-दुःख मानना, वह कल्पना की मान्यता है, वास्तविक वह स्वरूप है नहीं। और इसी प्रकार उनका दुःख भी काल्पनिक है। देखो! शरीर में रोग, क्षय (होवे) ए... हाय! ए... मर गये। मानो ऐसा हो गया। मर गया क्या? तूने कल्पना की है, दुःख काल्पनिक है ऐसा कहते हैं। शरीर

में रोग हुआ, शरीर में क्षय लागू पड़ा, यह सुलगा... क्या कहलाये वह क्षय ? फेफड़ा... फेफड़ा.. ! फोटो लिया (उसमें आया) । जाली पड़ गयी है, बापू! हैं... तीसरे नम्बर से आगे गया है, पहले नम्बर में होवे तो अभी उपाय कर सकते हैं। अभी तक ध्यान नहीं रखा ? कुछ होता था परन्तु ऐसा का ऐसा व्यापार का धन्धा, फुर्सत रही नहीं। तीसरे नम्बर (थर्ड स्टेज) गया है। स्त्री को कहना नहीं, हों! अब थोड़े दिन में मरनेवाले हो। ऐ... आहाहा! ये शरीर आदि के दुःख वह दुःख नहीं, कल्पना मानकर बैठा, उल्टी-उल्टी... यह भाषा तो बोलता है। इसी प्रकार उनका दुःख भी काल्पनिक है। देखो! यह इसका श्लोक—

दोहा - विषयी सुख दुःख मानते, है अज्ञान प्रसाद।
भोग रोगवत् कष्ट में, तन मन करत विषाद॥६॥

ये विषय के सुख, इन्द्रियों के सुख-दुःख मानते (हैं वे) अज्ञानी कल्पना से मानते हैं। यह अज्ञान का प्रसाद है, मूढ़ता की मेहरबानी है, यह मूढ़ता की मेहरबानी है। तुम सब टाइप में ऐसे शब्द डालते होंगे न ? यह शौकीन है न ! इसके धन्धे में होता है न ! शब्द का मिलान करे। कक्का आवे तो कक्का के साथ आवे। 'अ' आवे तो 'अ' आवे 'ब' आवे तो 'ब' का मेल खाये तो ऐसा सब व्यवहार, व्यवस्था इस बात में... तो यह साहित्यकार कहलाये, पुस्तक बनानेवाला कहलाये।

मुमुक्षु : भाव की धारा बनी रहे।

उत्तर : भाव तो ठीक परन्तु यह भाषा की रचना में सब रचना, समरूप आनी चाहिए। कहीं-कहीं व्यवा आवे कहीं-कहीं नना आवे, कहीं-कहीं ममा आवे, कहीं-कहीं मै मा व्यवस्थित आवे तब यह रचना करनेवाला साहित्यकार कहलाये।

यहाँ तो कहते हैं कि पर में अज्ञान के प्रसाद से तूने कल्पना करके माना है। भोग रोगवत् कष्ट में,... शरीर में दुःख आवे या रोग आवे तब भोग रोगवत् लगते हैं। ज्ञानी को भोग रोगवत् लगते हैं और इसे रोगवत् लगते हैं (इन) दोनों में अन्तर है। धर्मी को आत्मा के आनन्द का पता है कि मैं अतीन्द्रिय आनन्द हूँ उसे भोग के समय भोग रोग जैसे लगते हैं। आहाहा!

अरे! कोई उपसर्ग आया। धर्मी सम्यग्दृष्टि जीव, आत्मा के स्वभाव का-आनन्द

का अनुभव है, उसे हों! ऐसा भान करे कि रोग छोड़ा, भोग छोड़ा, कुछ छोड़ा नहीं, धर्म छोड़ा है। समझ में आया? जिसे सम्यग्दर्शन में आत्मा के आनन्द का अनुभव हुआ है, उस आनन्द के अनुभव के समक्ष भोग रोग जैसे अन्दर में लगते हैं। उसे अन्दर दुःख-उपसर्ग लगता है। इसी प्रकार अज्ञानी को बाहर के कष्ट के समक्ष कल्पना के कष्ट के समक्ष अनुकूल भोग उसे रोग जैसे लगते हैं, दुःख लगते हैं। समझ में आया? तन मन करत विषाद। लो! खेद करता है, खेद करता है।

शंका - ऐसा सुन शिष्य पुनः कहने लगा कि 'यदि ये सुख और दुःख वासनामात्र ही हैं तो वे लोगों को उसी रूप में क्यों नहीं मालूम पड़ते हैं।' आचार्य समझाते हुए बोले -

मोहेन संवृतं ज्ञानं स्वभावं लभते न हि।

मत्तः पुमान्पदार्थानां यथा मदनकोद्रवैः॥७॥

अर्थ - मोह से ढका हुआ ज्ञान, वास्तविक स्वरूप को वैसे ही नहीं जान पाता है, जैसे कि मद पैदा करानेवाले कोद्रव (कोदों) के खाने से नशैल-बे-खबर हुआ आदमी पदार्थों को ठीक-ठीक रूप से नहीं जान पाता है।

विशदार्थ - मोहनीयकर्म के उदय से ढका हुआ ज्ञान वस्तुओं के यथार्थ (ठीक-ठीक) स्वरूप का प्रकाशन करने में दबी हुई सामर्थ्यवाला ज्ञान, सुख, दुःख, शरीर आदिक पदार्थों के स्वभाव को नहीं जान पाता है। परस्पर में मेल रहने पर भी किसी विवक्षित (खास) पदार्थ को अन्य पदार्थों से जुदा जतलाने के लिये कारणीभूत धर्म को (भाव को) स्व असाधारण भाव कहते हैं! अर्थात् दो अथवा दो से अधिक अनेक पदार्थों के बीच मिले रहने पर भी जिस असाधारण भाव (धर्म) के द्वारा किसी खास पदार्थ को अन्य पदार्थों से जुदा जान सके, उसी धर्म को उस पदार्थ का स्वभाव कहते हैं।

ऐसा ही अन्यत्र भी कहा है - 'मलविद्ध'

'मल सहित मणि का प्रकाश (तेज) जैसे एक प्रकार से न होकर अनेक प्रकार से होता है, वैसे ही कर्मसम्बद्ध आत्मा का प्रतिभास भी एक रूप से न होकर अनेक रूप से होता है।'

यहाँ पर किसी का प्रश्न है कि -

अमूर्त आत्मा का मूर्तिमान कर्मों के द्वारा अभिभव (पैदा) कैसे हो सकता है?
उत्तरस्वरूप आचार्य कहते हैं कि -

‘नशे को पैदा करनेवाले कोद्रव-कोदों धान्य को खाकर जिसे नशा पैदा हो गया है, ऐसा पुरुष घट पट आदि पदार्थों के स्वभाव को नहीं जान सकता, उसी प्रकार कर्मबद्ध आत्मा पदार्थों के स्वभाव को नहीं जान पाता है। अर्थात् आत्मा व उसका ज्ञान गुण यद्यपि अमूर्त है, फिर भी मूर्तिमान कोद्रवादि धान्यों से मिलकर वह बिगड़ जाता है। उसी प्रकार अमूर्त आत्मा मूर्तिमान् कर्मों के द्वारा अभिभूत हो जाता है और उसके गुण भी दबे जा सकते हैं।७।’

शरीर आदिकों के स्वरूप को न समझता हुआ आत्मा शरीरादिकों को किसी दूसरे रूप में ही मान बैठता है।

दोहा - मोहकर्म के उदय से, वस्तुस्वभाव न पात।
मदकारी कोदों भखे, उल्टा जगत लखात।७।

गाथा - ७ पर प्रवचन

अब शिष्य प्रश्न करता है। शंका - ऐसा सुन शिष्य पुनः कहने लगा कि ‘यदि ये सुख और दुःख वासनामात्र ही हैं तो वे लोगों को उसी रूप में क्यों नहीं मालूम पड़ते हैं।’ लोगों को क्यों नहीं पता पड़ता? तुम कहते हो कि कल्पनामात्र है। समझ में आया? सुख-दुःख कल्पनामात्र है। यह इन्द्रिय के विषय मानी हुई वासना से ही माना है, खोटी गन्ध उठी है तो लोगों को क्यों पता नहीं पड़ता? लोगों को उसी रूप में क्यों नहीं मालूम पड़ते हैं।’ वह जिस प्रकार से सुख-दुःख की बात कल्पना से मानी हुई है, वह लोगों को क्यों पता नहीं पड़ता? आचार्य समझाते हुए बोले - यह श्लोक इन्होंने रखा है, भाई! चर्चा में। देखो! कर्म के कारण (होता है)।

मोहेन संवृतं ज्ञानं स्वभावं लभते न हि।

मत्तः पुमान्पदार्थानां यथा मदनकोद्रवैः॥७॥

विशिष्टता तो क्या है ? मोहेन संवृतं ज्ञानं स्वभावं लभते न हि। यह शब्द पड़ा है। अज्ञानी-कर्म के पाक में मोह से जुड़ा हुआ (इस) स्वभाव की शुद्धता, असाधारण अपना धर्म, उसे पाते नहीं। क्या कहा ?

है अन्दर, यह आयेगा अन्दर, अन्दर है, आयेगा। स्वभाव है न ? स्वभावं लभते न हि। अपना असाधारण धर्म। असाधारण स्वभावं लभते न हि। का अर्थ — असाधारण अर्थात् आनन्द आत्मा में है ऐसे स्वभाव को प्राप्त नहीं करता। मोहेन संवृतं ज्ञानं यह मोह अर्थात्... यह मोहेन शब्द में टीकाकार ने कितना (स्पष्टीकरण) किया है ? मोहेन मोहनीयकर्मणो विपाकेन ऐसा शब्द है। विपाक अर्थात् कर्म के फल में अन्दर दुःख में जुड़ गया। समझ में आया ? इससे इसे परवस्तु में सुख-दुःख है ऐसा भासित हो जाता है। पर में सुख-दुःख भासित हो जाता है। कल्पना से भासित होता है ऐसा कहते हैं। विपाकेन कर्म के पाक में जुड़ने से। भगवान आत्मा के स्वभाव को अप्राप्त करता हुआ - ऐसा कहते हैं। समझ में आया ?

अपना जो ज्ञान और आनन्द असाधारण स्वभाव है, उसे मिथ्यादृष्टि उसके आत्मा के आनन्द को और ज्ञान को प्राप्त नहीं करके मोहकर्म के पाक में जुड़ जाता है। स्वभाव से विभाव में जुड़ जाता है। समझ में आया ? आहाहा ! परन्तु पहले से उपादान से बात की है कि उपादान तेरे परिणाम से ही तुझे मुक्ति होती है और द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव के निमित्त होते हैं। इस प्रकार यहाँ उपादान तेरा है और बाद में कहेंगे, ३२ वीं गाथा में है न ? कि कर्म का और शरीर का उपकार तू करता है, तब तेरा अपकार होता है। समझ में आया न ? ऐसा है कुछ। ३२ है न ? ३२, उपकार, उपकार। यह तो कर्म, कर्म के काल में... यह तो यह है, देखो ! ३२ वीं है न ? पर के उपकार करने को छोड़कर अपने उपकार करने में तत्पर हो जाओ। 'परोपकृतिमुत्सृज्य, स्वोपकारपरो भव।' ३२, ३२ (गाथा)। उसका अर्थ 'परोपकृतिमुत्सृज्य', तू पर का उपकार करता है, कर्म बाँधने में कर्म का तू उपकार करता है यह सब है अन्दर, हों ! समझ में आया ? 'परस्य कर्मोणो देहादेर्वा अविद्यावशात्' देखो ! भाई ! है, इसमें टीका में है, ऐई ! 'परस्य कर्मोणो देहादेर्वा अविद्यावशात् क्रियमाणमुपकारं' तेरे स्वरूप के भान बिना अविद्या के कारण तू कर्म

का उपकार करता है अर्थात् अज्ञान से कर्म बाँधता है, ऐसा। अज्ञान से कर्म बाँधकर उपकार उसे होता है। देह का उपकार होता है कि देह को रखूँ ऐसा देह को उपकार होता है। तेरा अपकार होता है और तेरा उपकार कर तो उसका अपकार होता है, वह तेरे हाथ के अधिकार की बात है। समझ में आया ? इसे आगे सब लेंगे।

पर कहिये कर्म अथवा शरीरादिक, इनका अविद्या-अज्ञान अथवा मोह के वश से जो उपकार किया जाता रहा है, उसे विद्या सम्यग्ज्ञान अथवा वीतरागता के अभ्यास से छोड़कर प्रधानता से अपने (आत्मा के) उपकार करने में तत्पर हो जाओ। ३२ में है। समझ में आया ? एक जगह क्या कहा ? दूसरी जगह इससे कुछ विरुद्ध कहें ? क्या कहा, समझ में आया इसमें ? तू अज्ञानभाव करके कर्म बाँधता है और शरीर को उसमें रखना चाहता है, वह तू उनका उपकार करता है और तुझे होता है अपकार, तुझे होता है नुकसान। और तू तेरा ध्यान करे तो तुझे होगा उपकार और उन्हें होगा अपकार। शरीर का चाहे जो होता हो, वह हो। आहाहा! कर्म बाँधेंगे नहीं यह कर्म का अपकार हुआ। चन्दुभाई!

मुमुक्षु : किसी की सेवा करता होवे तो....

उत्तर : कौन सेवा करता था ? कौन करता है ? कौन कहा ? पर की सेवा का भाव करता है वह पर का उपकार करता है अर्थात् अपना नुकसान करता है। सेवाभावी हैं न ये सब ? सब पुस्तकें लिखनेवाले (ऐसा) मानो दुनिया का सेवाभाव करते हैं। पैसा पैदा करें यह मूल तो इसके लिये होता है।

मुमुक्षु : शौक....

उत्तर : यह शौक मोह का है, मूढ़ता का शौक है, यह तो यहाँ कहते हैं। आत्मा का उपकार करनेवाला पर का उपकार नहीं करता अर्थात् कर्म आदि नहीं बाँधता और शरीरादि का वह कुछ करने नहीं लगता। उसे पर का कुछ करने का विकल्प नहीं है क्योंकि कर नहीं सकता। अपना करनेवाला अपने आत्मा का उपकार करता है। मैं ज्ञानानन्द हूँ ऐसे श्रद्धा-ज्ञान करता हुआ अपना उपकार स्वयं करता है। पर का अपकार अर्थात् पर का ध्यान नहीं रखता पर का होना हो वह होगा, मेरे आधीन कुछ है नहीं। कहो समझ में आया इसमें ? यह तो इसके साथ जरा मिलान करने को वर्णन किया। समझ में आया ?

मोहेन संवृतं ज्ञानं स्वभावं लभते न हि।

मत्तः पुमान्पदार्थानां यथा मदनकोद्रवैः॥७॥

यह दृष्टान्त ऐसा ही समझना। अर्थ – मोह से ढका हुआ ज्ञान,... देखो! विपाक से, हों! मूल तो यह है न? इसका अर्थ यह है कि भगवान आत्मा अपने स्वभाव की ओर का लक्ष्य करके अपना विकास करना चाहिए, उसे छोड़कर मोह के पाक में जुड़ने से अपने विकास को रौंदता है, बस! यह बात है। आहाहा! अब सुन न! एक द्रव्य से दूसरे द्रव्य का तीन काल में कहीं होता होगा? यह तो बात ली है। दूसरे बोल से उपादान परिणाम से तो बात ली है। उपादान के परिणाम, हों! ध्रुव नहीं, वर्तमान उपादान की जो पर्याय प्रगट करे, उसे बाह्य के अनुकूल निमित्त होते ही हैं। एक कारण होवे तो दूसरे कारण होते ही हैं। उसे दूसरे कारण का इन्तजार नहीं करना पड़ता। स्वतन्त्र उपादान के परिणाम अपने हैं। समझ में आया?

यहाँ भी अपने शुद्ध उपादान के परिणाम को – लाभ को छोड़कर अशुद्ध उपादान में मोह के वश पड़ा आत्मा... ढका हुआ ज्ञान,... अपने ज्ञान के विकास को ढँक देता है अथवा अपने विकास में पर्याय को प्रगट होने को छोड़ देता है – ऐसी है बात तो (इसका आधार) देकर अज्ञानी कहता है (देखो) मोह के कारण ऐसा है। इष्टोपदेश में ऐसा लिखा है। कल बीस पृष्ठ का आया था। अरे! भगवान बापू! यह क्यों तुझे ठीक लगता है? जड़कर्म मुझे नुकसान करता है यह तुझे अच्छा लगता है परन्तु मैं मुझे नुकसान करूँ तब कर्म निमित्तमात्र कहलाता है। यह इसे अच्छा नहीं लगता। नहीं, यह दूसरा मुझे नुकसान करता है। आहाहा! ए..। पोंगा है? दुनिया में भी ऐसा कहते हैं, नहीं! दस वर्ष का लड़का हो और उसकी माँ के पास जाये (और कहे) माँ, मुझे उसने मारा, तो (पूछे) कौन? कि अमुक.... वह तो आठ वर्ष का है, तू तो दस वर्ष का है। पोंगा तुझे मार गया। शिकायत लेकर जाये तो उसकी माँ उसे ऐसा कहे – परन्तु तू दस वर्ष का वह आठ वर्ष का, तुझे मार गया? मारने तो लगा था। उसने मारा तो पत्थर ऐसा (मारा) परन्तु फिर लगा नहीं, इसलिए रोता-रोता माँ के पास आया।

इसी प्रकार (यहाँ कहते हैं)..... आत्मा है या नहीं तू? तुझे कर्म नुकसान करावे?...

तू बैठा है या नहीं ? नवरंगभाई ! कर्म विचारै कौन भूल मेरी अधिकाई । कर्म तो रंक, बेचारे जड़ हैं... तू चैतन्यमूर्ति आत्मा (और) तुझे वह जड़ हैरान करे ? ऐसा राग लेकर आयेगा ? मूर्ख है ? वे तो हैरान करते नहीं । तू तुझे हैरान करता है और तू (कहता है कि) वे मुझे हैरानपना कराते हैं ऐसा राग लेकर आया है । भगवान कहते हैं कि चल... चल... समझ में आया ? मूलचन्दभाई समझ में आया या नहीं इसमें ?

मोह से ढका हुआ... देखो ! अपने स्वभाव का असाधारण धर्म जो करना चाहिए वह प्रगट नहीं किया - ऐसा है न पाठ - 'स्वभावं लभते न हि' वास्तविक स्वरूप को वैसे ही नहीं जान पाता है,... वास्तविक स्वरूप, देखो ! स्वभाव है न ? भगवान ज्ञानानन्द प्रभु की श्रद्धा ज्ञान में आत्मा की शान्ति की प्राप्ति को प्रगट करना चाहिए ऐसा न करके कर्म के वश और आधीन होकर, 'कर्म के वश' शब्द है, हाँ ! ऐसा आगे आयेगा । ३२ (गाथा में) ऐसा है । 'वश' शब्द पड़ा है, किसी जगह संक्षिप्त शब्द किया हो, संक्षिप्त हो गया इसलिए कर्म से हो गया ? पहली बात उपादान से कह गये हैं । 'उपादानयोगेन-कारणेन' समझ में आया ? आहाहा ! कौन जाने ? कैसे झगड़े डाले न अन्दर कि लोग बेचारे उलझ जाते हैं । सोनगढ़ कहता है वह सच्चा होगा ? या वे अमुक कहते हैं वह सच्चा होगा ? ऐसे बेचारे उलझन में पड़ जाते हैं । आहा ! मुश्किल से स्वतन्त्र होने का काल (आया) उसमें यह परतन्त्र (होने की बात अच्छी लगे कि) मुझे कर्म हैरान करते हैं । यह बात सच्ची, लो ! आहाहा !

बाहर की चीजें मिलें, न मिलने में कर्म निमित्त अवश्य परन्तु विकार करने में तुझे कर्म विकार कराता है ? अविकारी भगवान आत्मा का स्वभाव श्रद्धा-ज्ञान में नहीं लेता इसलिए विकार के भाव को तू तेरे अपराध से करता है । आहाहा ! यह बात है । कहो, बसन्तलालजी ! तुम्हारे यहाँ बहुत झगड़ा चलता है । कलकत्ता और इन्दौर और चारों ओर । आहाहा ! भाई ! परन्तु बापू ! तुझे रुचता कैसे है ? कर्म मुझे नुकसान (करे) जड़, रजकण, मिट्टी, धूल मुझे हैरान करे यह बोलते हुए तुझे शर्म नहीं लगती ? समझ में आया ? मिट्टी, धूल, मुझे हैरान करती है... ऐला... ! तू चैतन्यमूर्ति आत्मा, इसे कर्म मिट्टी-धूल हैरान करे, यह तुझे बोलते हुए कल्पना करते हुए शर्म नहीं आती ? नवरंगभाई ! भाई ! तू उल्टा पड़ा है, स्वभाव की सावधानी नहीं करता और पर में सावधानी होती है इसलिए स्वभाव को

प्राप्त नहीं करता - ऐसी बात है। आहाहा! दूसरी चीजें तो जगत में सब पड़ी हैं। पड़ी हैं तो तुझे क्या काम है? तेरा तेरे उपादान से काम तुझे लेना है या कोई दूसरा तुझे कर दे ऐसा है? आहाहा!

‘वास्तविक स्वरूप को वैसे ही नहीं जान पाता है, जैसे कि मद पैदा करानेवाले कोद्रव (कोदों) के खाने से नशैल-बे-खबर हुआ आदमी पदार्थों को ठीक-ठीक रूप से नहीं जान पाता है।’ ‘मद पैदा करानेवाले कोद्रव (कोदों) के खाने से नशैल-बे-खबर...’ कोदों खाते हैं न? वह भान भूल जाता है, उसमें यह स्वयं की योग्यता है उसमें कोदों तो निमित्तमात्र है। एक पदार्थ दूसरे को तीन काल-तीन लोक में नुकसान नहीं करता। समझ में आया?

मुमुक्षु : कोद्रव अर्थात्?

उत्तर : यहाँ कोई अनाज होता है, मदवाला अनाज होता है। होता है, मीठा मद निकलता है, कुछ होगा, उसका कुछ नहीं।

उसे खाकर के खाने से नशैल-बे-खबर हुआ.. भान भूल जाता है। अपनी पर्याय में अपना भान भूल गया, स्वयं का कारण है, हों! वह नहीं करता। नशैल-बे-खबर हुआ आदमी पदार्थों को ठीक-ठीक रूप से नहीं जान पाता है। जैसा पदार्थ का स्वरूप है, वैसा नहीं जान सकता है। कहो, समझ में आया? बहुत नशीली चीज होती है न? शराब आदि हैं। वे तो अन्दर निमित्त हैं, वे तो निमित्त हैं। आत्मा अपने स्वभाव का भान भूले अर्थात् बेभान होवे तब उसे-कोद्रव को निमित्त कहा जाता है। यह तो उपादान की बात पहले से कह गये हैं। समझ में आया? जगह-जगह... भाव तो अलग-अलग समझाना होवे तो अलग-अलग गाथा ले या नहीं?

विशदार्थ - मोहनीयकर्म के उदय से ढका हुआ ज्ञान... देखो! पाठ में उदय से है, हों! यहाँ आत्मा शुद्ध आनन्दकन्द की ओर का पाठ, आत्मा शुद्ध आनन्द, अतीन्द्रिय आनन्द का पाक प्रगट न करता हुआ आत्मा कर्म के पाक में जुड़ने से, उसके वश हो जाने से ऐसा चिदानन्द भगवान आत्मा के आधीन न होकर, आठ कर्म के पाक के आधीन होकर ज्ञान ढंक जाता है। ज्ञान में यथार्थता नहीं रहती है।

वस्तुओं के यथार्थ (ठीक-ठीक) स्वरूप का प्रकाशन करने में दबी हुई सामर्थ्यवाला ज्ञान,... लो! ज्ञान ढँक गया। स्वरूप का प्रकाशन करने में दबी हुई सामर्थ्यवाला ज्ञान, सुख, दुःख, शरीर आदिक पदार्थों के स्वभाव को नहीं जान पाता है। देखो! क्या कहते हैं? भगवान आत्मा अपने शुद्धस्वभाव की श्रद्धाज्ञान को स्वाधीन न होकर, अपना असाधारण स्वभाव जो दूसरों में नहीं, राग-द्वेष में नहीं, शरीर कर्म में नहीं - ऐसे अपने स्वभाव को नहीं प्राप्त करता हुआ... समझ में आया? इस मोह के वश में-आधीन होता हुआ, ऐसा जो दबा हुआ ज्ञान, विलुप्त हुआ ज्ञान, वह सुख-दुःख को नहीं जानता। यह सुख-दुःख किसे कहना? शरीर क्या है? उसके स्वभाव को ज्ञान जान नहीं सकता। शरीर, मिट्टी, जड़ है वह तुझे सुख-दुःख नहीं देता परन्तु अज्ञान में दब गया है। शरीर का स्वरूप ज्ञेय है, मैं ज्ञाता हूँ ऐसा नहीं जानता। सुख, दुःख संयोग दे, अनुकूल प्रतिकूल संयोग, वह तो बाहर की चीज है। परन्तु अपने ज्ञान को ढँक दिया, इससे वह अज्ञानी सुख-दुःख की वास्तविकता को देख-जान नहीं सकता। कहो, समझ में आया इसमें? आहाहा!

दबा हुआ सामर्थ्यवाला है न? स्वरूप का प्रकाशन करने में दबी हुई सामर्थ्यवाला ज्ञान,... भाई! दबी हुई सामर्थ्यवाला... यह भी उल्टी सामर्थ्य है न? आहाहा! समझ में आया? देखो! दृष्टान्त दिया है न? एक पत्थर था, बड़ा पुरुष-आकार पत्थर था, रात्रि में चार बजे, तीन बजे वहाँ गया। पत्थर पुरुषाकार था किसी ने कहा होगा, स्त्री को संकेत किया होगा, वह (नहीं थी) वहाँ दिखा पुरुष, ऐ...! तू यहाँ कौन? पत्थर के सामने गुत्थमगुत्था होकर... पत्थर (उसके ऊपर) गिरा (तो बोलने लगा) भाईसाहब! उठ जाओ, उठ जाओ, मैं हारा। परन्तु वह तो पत्थर है, परन्तु कहाँ उठ जाओ, उठ जाओ? उजाला (हुआ और उसे पता पड़ा कि) ओ...य यह तो पत्थर है। इसी प्रकार कर्म को चिपटा स्वयं और कर्म को कहता है भाईसाहब! हट जाओ, हट जाओ, हाँ! नुकसान करता चला जा, विकारी भाव करके कर्म को किया तूने और कहता है, अरे! मुझे कर्म ने दबाया, कर्म ने दबाया, तुझे दबाया नहीं, व्यर्थता क्यों (हैरान होता है)? समझ में आया? पत्थर के साथ गुत्थमगुत्था व्यर्थ में... आहाहा!

कहते हैं मोहनीय कर्म के उदय से थका हुआ, वश हो गया, स्वरूप का प्रकाशन करने में दबी हुई सामर्थ्यवाला ज्ञान,... वह देव के स्वरूप को न जाने, वह गुरु के स्वरूप को न जाने, शास्त्र के स्वरूप को न जाने, आत्मा के धर्म को न जाने, शुद्धता को न जाने, पुण्य के परिणाम को भी वह न जाने। वास्तविक ज्ञान दब गया हो तो पुण्य के परिणाम को धर्म माने। समझ में आया ?

पदार्थों के स्वभाव को नहीं जान पाता है। परस्पर में मेल रहने पर भी... देखो! क्या कहते हैं ? किसी विवक्षित (खास) पदार्थ को अन्य पदार्थों से जुदा जतलाने के लिये कारणीभूत धर्म को (भाव को) स्व असाधारण भाव कहते हैं! जैसे भगवान आत्मा, राग-द्वेष से जरा मलिन दिखता है। कर्म के निमित्त में, संयोग में (दिखता है) परन्तु आत्मा का असाधारण स्वभाव तो आनन्द और ज्ञान है। समझ में आया ? परस्पर में मेल... साथ में है। इस प्रकार राग-द्वेष साथ में है, शरीरादि साथ में है और आत्मस्वभाव भी साथ में दिखता है।

किसी विवक्षित (खास) पदार्थ को अन्य पदार्थों से जुदा जतलाने के लिये कारणीभूत धर्म को (भाव को) स्व असाधारण भाव कहते हैं! अर्थात् दो अथवा दो से अधिक अनेक पदार्थों के बीच मिले रहने पर भी जिस असाधारण भाव (धर्म) के द्वारा किसी खास पदार्थ को अन्य पदार्थों से जुदा जान सके, उसी धर्म को उस पदार्थ का स्वभाव कहते हैं। यह व्याख्या की है। स्वभाव का अर्थ किया, दूसरे पद का। दूसरा पद है न ? 'स्वभावं लभते न हि' समझ में आया ? किसी लड़के ने झगड़ा किया हो और किसी के लड़के पर झगड़ा डाल दे, दोनों इकट्ठे हैं न ? किसका दोष था उसे नहीं देखता। इसी प्रकार यह आत्मा और राग-द्वेष साथ में, कर्म साथ में, शरीर साथ में, उसमें मेरा असाधारण स्वभाव राग से भिन्न है ऐसा स्वभाव राग में और पर में नहीं है ऐसे असाधारण आत्मा का ज्ञानानन्दस्वभाव, उसके साथ पुण्य-पाप शरीर, कर्म से मिले हुए जीव में अपने असाधारण स्वभाव को दो भान में भिन्न कर नहीं सकता। समझ में आया ?

यह इष्टोपदेश है, इसलिए यह लिया है। इष्टोपदेश किसे कहना ? हितकर, प्रियकर उपदेश किसे कहना ? कि तू तेरी भूल से भटकता है ऐसा उपदेश, वह हितकर है। कर्म

के कारण भटकता है यह उपदेश हितकर नहीं है। इसमें अपने को शुद्ध होने का कहाँ रहा ? समझ में आया ? जैसे पर-पदार्थ से तुझे नुकसान होता है यह उपदेश हितकर नहीं है; पर-पदार्थ से तुझे लाभ होता है, यह उपदेश हितकर नहीं है। तेरे विपरीत भाव से तुझे अहितकर होता है, यह उपदेश हितकर है कि जिससे उल्टे पुरुषार्थ को छोड़कर स्वभाव का पुरुषार्थ करे। आहाहा ! समझ में आया ?

किसी खास पदार्थ को अन्य पदार्थों से जुदा जान सके,... भगवान् आत्मा... ! विकारी परिणाम आस्रव तत्त्व है, अजीव तत्त्व-शरीर, कर्म आदि; अपना तत्त्व ज्ञान, आनन्द आदि। ये दोनों इकट्ठे होने पर भी, असाधारण स्वभाव से आत्मा भिन्न पड़ता है। इसे यह वैभानजी अपने असाधारण स्वभाव को या इसका असाधारण, इसका रागादिस्वभाव को, कर्म आदि का स्वभाव इन दोनों को भिन्न नहीं कर सकता।

फिर से कहते हैं यह आत्मा, इसका असाधारण अर्थात् दूसरे में नहीं रहा हुआ भाव, आत्मा में ज्ञान और आनन्द है, वह दूसरे राग-द्वेष के भाव में नहीं है, शरीर में नहीं है, कर्म में नहीं है, स्त्री में नहीं है, पुत्र में-पर में नहीं है, वह अपना असाधारण अर्थात् अपने में ही हो और दूसरे में न हो - ऐसा आत्मा का स्वभाव ज्ञान और आनन्द, उसे पर से भिन्न नहीं कर सकता। और अपने से पर का भी असाधारण विकार या दुःख का कारण कर्म आदि परचीज है उसका असाधारण जो स्वभाव है, उसे भी अपने से भिन्न नहीं करता, इसका कारण कि मोह से ढँका हुआ ज्ञान विपरीत हो गया है इसलिए। आहाहा ! समझ में आया ?

दो चीजें इकट्ठी पड़ी हों परन्तु परीक्षा करना न आवे तो एक को दूसरे में खता डाले। समझ में आया ? इसी प्रकार आत्मा अपना असाधारण अर्थात् दूसरे में नहीं ऐसा गुण-शान्ति आनन्द और ज्ञान, राग-द्वेष में नहीं, ऐसा मलिन मैल वह आत्मा में नहीं। कर्म और शरीर अजीव है, वह अजीवपना आत्मा में नहीं। वह उनमें ही है। आहाहा ! मलिनस्वभाव असाधारण विकार का; जड़स्वभाव कर्म शरीर का असाधारण (स्वभाव); चैतन्यस्वभाव ज्ञान और आनन्द का असाधारण स्वभाव। मोह के वश पड़ा हुआ अज्ञानी इन ऐसे पदार्थों के स्वभाव को भिन्न नहीं जान सकता। दो को एक मानता है ऐसा कहते हैं। समझ में आया ?

यह तो न्याय से बात चलती है। गुलाबभाई ! लॉजिक से चलती है या नहीं ? या ऐसे के ऐसे चटरपटर होकर चलती है कुछ ? न्याय से तो बात चलती है, भले संक्षिप्त भाषा है,

लोगों को कुछ पकड़ना चाहिए न! इसे पकड़ना है या नहीं? या किसी से समझे ऐसा है? आगे इनकार करेंगे। किसी से नहीं समझता, यह स्वयं समझे तब दूसरे को निमित्त कहा जाता है। यह समझने में स्वतन्त्र है, विपरीतता करने में यह स्वतन्त्र है। अनन्त तीर्थकर आवे तो भी समझ जाये ऐसा नहीं है। समझ में आया?

मुमुक्षु :

उत्तर : यह बात आगे कहेंगे। आत्मा का गुरु आत्मा ऐसा आगे कहेंगे। सब बात आयेगी, इसमें तुम्हारे जितने बोल हैं, उसमें कोई बाकी नहीं रखेंगे। यह जैन का उपनिषद् है। वास्तविक तत्त्व का यह गागर में सागर भरा हुआ इष्टोपदेश है। गागर में सागर भर दे... समझ में आया या नहीं? ऐसे संक्षिप्त ५१ श्लोक हैं। उनमें सब तत्त्व है। वीतराग सर्वज्ञ का कहा हुआ संक्षेप में बहुत तत्त्व भर दिया है, उसमें यहाँ अन्त में यह कहना चाहते हैं। साथ में भी दूसरे भाव हो और साथ ही अपना भाव है परन्तु मूढ़ हुआ जीव दोनों के भाव को अलग नहीं कर सकता। यह इसकी अपनी कमजोरी है, अलग करे तो अपना गुण है। समझे न? इसमें कोई दूसरा कर दे - ऐसा नहीं है। (श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव!)